शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.354 (SJIF)

भारत में राजनीति और शिक्षाः शक्ति, नीति और शिक्षणशास्त्र

प्राप्तिः 02.08.2021
स्वीकृतः 10.09.2021

डॉ. शिवानी
राजनीतिविज्ञान,
डी. ए. वी. सैन्टनरी, कॉलेज, फरीदाबाद
Email: shivanitanwar1973@gmail.com

सारांश

भारत की शिक्षा प्रणाली शैक्षणिक अनिवार्यताओं और राजनीतिक अनिवार्यताओं के चौराहे पर मौजूद है, जो अपनी परिवर्तनकारी क्षमता और शासन की वास्तविकताओं के बीच फंसी हुई है। प्रशासनिक पाइपलाइन के रूप में अपनी औपनिवेशिक भूमिका से एक विवादित राष्ट्र–निर्माण परियोजना के रूप में अपनी वर्तमान स्थिति में परिवर्तित होने के बाद, यह क्षेत्र मौलिक तनावों को प्रकट करता है। पाठ्यक्रम डिजाइन, संस्थागत नेतृत्व की नियुक्तियों और नीति निर्माण सभी भारत के भविष्य के प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों के लिए युद्ध के मैदान के रूप में उभरे हैं।

जबकि राजनीतिक जुड़ाव ने शिक्षा के अधिकार अधिनियम और सकारात्मक कार्रवाई नीतियों जैसी ऐतिहासिक पहलों को उत्प्रेरित किया है, इसने एक साथ प्रतिक्रियात्मक नीति निर्माण और संस्थागत अतिक्रमण के माध्यम से प्रणालीगत शिथिलता को मजबूत किया है। निजी शिक्षा प्रदाताओं के बढ़ते पदचिह्न और सांस्कृतिक पहचान के बारे में तेजी से ध्रुवीकृत बहस इन चुनौतियों के लिए नए आयाम पेश करती है। सार्थक परिणाम देने की प्रणाली की क्षमता अब एक महत्वपूर्ण विरोधाभास को नेविगेट करने पर निर्भर करती है मूल शैक्षणिक कार्यों को पक्षपातपूर्ण एजेंडों से अलग करते हुए ठोस सुधार के लिए राजनीतिक पूंजी का लाभ उठाना। केवल इस संतुलन के माध्यम से ही भारतीय शिक्षा नरगरिकों को सशक्त बनाने और राष्ट्रीय विकास को आगे बढ़ाने के अपने दोहरे जनादेश को पूरा कर सकती है।

मुख्य शब्दः *राजनीति, शिक्षा नीति, आरक्षण, चुनावी रणनीति, भारत।*

परिचय

भारत में शासन और शिक्षा के बीच संबंधों की शुरुआत औपनिवेशिक काल में हुई थी जब अंग्रेजों ने मुख्य रूप से अपने प्रशासनिक हितों की पूर्ति के लिए शिक्षा प्रणाली तैयार की थी। इस प्रणाली का उद्देश्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का एक वर्ग तैयार करना था जो जनता को सशक्त बनाने के बजाय औपनिवेशक प्रशासन को सुविधाजनक बनाने के लिए मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकें। स्वदेशी जान प्रणालियों की उपेक्षा करते हुए ब्रिटिश मूल्यों

केंद्रित पाठयक्रम ने औपचारिक शिक्षा और भारत के सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ के बीच एक निरंतर अंतर पैदा किया। यह औपनिवेशिक दृष्टिकोण दर्शाता है कि कैसे शिक्षा को राजनीतिक साधन के रूप में रणनीतिक रूप से सत्ता और वैचारिक नियंत्रण बनाए रखने के लिए नियोजित किया जा सकता है। 1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत के नेतृत्व ने शिक्षा को राष्ट्र निर्माण, लोकतंत्र और सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला के रूप में फिर से परिभाषित किया। राजनीति विज्ञान के दृष्टिकोण से, इसने औपनिवेशिक अधीनता से लोकतांत्रिक शासन में सक्रमण को चिहिंनत किया, जहाँ शिक्षा नागरिक जुड़ाव और राष्ट्रीय एकता को विकसित करने का एक साधन बन गई। राज्य ने अब सामूहिक पहचान बनाने और ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने के लिए शिक्षा नीति का सक्रिय रूप से उपयोग किया। इस वैचारिक पुनर्सरंचना में एक निर्णायक क्षण कोठारी आयोग (1964–66) था, जिसने भारत के राजनीतिक और विकासात्मक प्रक्षेपवक्र में शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट किया। आयोग ने जोर देकर कहा कि शिक्षा को न केवल आर्थिक और वैज्ञानिक विकास को आगे बढ़ाना चाहिए, बल्कि सामाजिक समानता और लोकतांत्रिक आदर्शों को भी आगे बढ़ाना चाहिए राजनीतिक सिद्धांत में मूल सिद्धांत। इसने शिक्षा को एक राष्ट्रीय प्राथमिकता के रूप में तैयार किया, जिसके लिए व्यवस्थित योजना और राजनीतिक प्रतिवद्धता की आवश्यकता है। समान स्कूल प्रणाली जैसे प्रस्तावों ने वर्ग असमानताओं को कम करने की मांग की, जो समतावादी शासन के लिए राज्य के समर्पण को दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, आयोग ने एक ऐसे शिक्षा मॉडल की वकालत की, जो आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोणों को सांस्कृतिक संरक्षण के साथ सामंजस्य स्थापित करता हो राज्य की नीति में परंपरा के साथ प्रगति को समेटने पर राजनीति विज्ञान की बहसों को प्रतिध्वनित करता हो।

अंततः भारत के स्वतंत्रता के बाद के शिक्षा सुधार बताते हैं कि कैसे शासन राजनीतिक और विकासात्मक लक्ष्यों के साथ संरेखित करने के लिए संस्थानों को नया रूप दे सकता है। कोठारी आयोग के ढांचे ने शिक्षा को एक परिवर्तनकारी राजनीतिक उपकरण के रूप में स्थापित किया जो सामाजिक पदानुक्रमों को पुनर्गठित करने, अवसरों तक पहुँच का विस्तार करने और राष्ट्र की वैचारिक नींव को डालने में सक्षम हो। यह विकास भारत में राजनीतिक शासन और शैक्षिक रणनीति के बीच स्थायी और गतिशील अंतर्सम्बन्ध को उजागर करता है।

शैक्षिक नीतियों का विकासः

भारत के शैक्षिक ढांचे में काफी बदलाव आया है, जो देश की बदलती राजनीतिक गतिशीलता और शासन के तरीकों के साथ–साथ विकसित हो रहा है। इस प्रगति की समकालीन सामाजिक–राजनीतिक वास्तविकताओं के अनुरूप महत्त्वपूर्ण नीतिगत बदलावों द्वारा चिह्नित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986, 1992 में संशोधित) के साथ एक महत्त्वपूर्ण सुधार सामने आया, जिसे गठबंधन की राजनीति और प्रारंभिक आर्थिक सुधारों द्वारा चिह्नित रानजीतिक संक्रमण की अवधि के दौरान पेश किया गया था। नीति ने वंचित समूहों के लिए शिक्षा तक पहुँच का विस्तार करने, शैक्षणिक सामग्री का आधुनिकीकरण करने, कौशल–आधारित प्रशिक्षण को बढ़ाने और शैक्षिक प्रशासन को विकेंद्रीकृत करने को प्राथमिकता दी। इसने राष्ट्रीय सामंजस्य को मजबूत

करने और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने की शिक्षा की क्षमता पर भी प्रकाश डाला, जिससे विकासात्मक उत्प्रेरक और सामाजिक सद्भाव के लिए एक राजनीतिक साधन दोनों के रूप में इसकी दोहरी भूमिका का पता चला। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) एक और महत्त्वपूर्ण मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है, जिसने प्राथमिक शिक्षा को एक लागू करने योग्य संवैधानिक अधिकार में बदल दिया। 6–14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य स्कूली शिक्षा की गारंटी देकर, इस कानून ने एक कानूनी सफलता और समान विकास के बारे में एक राजनीतिक बयान दोनों का गठन किया। इसका कार्यान्वयन शैक्षिक असमानता पर बढ़ते सार्वजनिक विमर्श और चुनावी घोषणापत्रों में शिक्षा पर बढ़ते जोर के साथ हुआ।

ये नीतिगत बदलाव दर्शाते हैं कि भारत के शैक्षिक सुधार अक्सर राजनीतिक बातचीत और सार्वजनिक जुड़ाव के क्षेत्र के रूप में काम करते हैं। शिक्षा पहलों को नियमित रूप से चुनावी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने, वैचारिक पदों को स्पष्ट करने या मतदाताओं की मांगों का जवाब देने के लिए नियोजित किया जाता है, जिससे यह क्षेत्र राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण मंच बन जाता है। संसाधन वितरण, पाठ्यक्रम डिजाइन और नीति निष्पादन अक्सर शैक्षिक उद्देश्यों के साथ–साथ राजनीतिक विचारों को दर्शाते हैं। नतीजतन, भारत की शिक्षा प्रणाली शैक्षणिक लक्ष्यों और शासन प्राथमिकताओं के बीच एक जटिल संबंध को दर्शाती है, जहां राजनीतिक कारक अक्सर शैक्षिक दिशाओं पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

शैक्षिक प्रशासन में संघीय तनावः

भारत के संघीय शासन ढांचे ने शिक्षा नीति निर्माण के लिए एक जटिल और अक्सर विवादास्पद ढांचा तैयार किया है, जिसमें ओवरलैपिंग आथॉरिटीज और प्रतिस्पर्धी प्राथमिकताएं शामिल हैं। समवर्ती सूची में शिक्षा को संवैधानिक स्थान देने से केंद्र और राज्य दोनों सरकारों को इस क्षेत्र में विधायी शक्तियां मिलती हैं, जो सैद्धांतिक रूप से सहयोगी शासन को सक्षम बनाती है लेकिन अक्सर अधिकार क्षेत्र के टकराव का कारण बनती हैं। सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने के बजाय, इस व्यवस्था ने अक्सर राष्ट्रीय मानकीकरण प्रयासों और शैक्षिक स्वायतता के लिए क्षेत्रीय आकांक्षाओं के बीच तनाव को जन्म दिया है।

मजबूत क्षेत्रीय पहचान वाले राज्य विशेष रूप से दक्षिण भारत में स्थानीय सांस्कृतिक और भाषाई प्राथमिकताओं के अनुसार शिक्षा नीति को आकार देने के अपने अधिकार पर लगातार जोर देते रहे हैं। तमिलनाडु का हिंदी थोपने का विरोध और केरल का अपने स्थानीय शिक्षा मॉडल का बचाव इस बात का उदाहरण है कि कैसे उप–राष्ट्रीय सरकारें कथित केंद्रीय अतिक्रमण के खिलाफ अपनी शैक्षिक संप्रभुता की रक्षा करती हैं। इसके विपरीत, आर्थिक रूप से वंचित राज्य अक्सर वित पोषण, बुनियादी ढांचे के विकास और क्षमता निर्माण पहलों के माध्यम से अपनी शिक्षा प्रणालियों को मजबूत करने के लिए अधिक केंद्रीय हस्तक्षेप की मांग करते हैं। यह गतिशीलता एकरूपता और क्षेत्रीय विशिष्टता के बीच एक सतत बातचीत बनाती है, जहां नीति निर्माण में राजनीतिक गणना अक्सर विशुद्ध रूप से शैक्षिक विचारों से अधिक होती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) और उसका क्रियान्वयन इस राजनीतिक परिदृश्य में विशेष रूप से विवादास्पद युद्धक्षेत्र के रूप में उभरा है। जाहिर तौर पर एक अकादमिक दिशानिर्देश होने के बावजूद, NCF व्यवहार में सत्तारूढ़ प्रतिष्ठान की वैचारिक दिशा को दर्शाता है, जिसमें प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था अपने विश्वदृष्टिकोण के साथ संरेखित करने के लिए पाठ्यक्रम की सामग्री को फिर से आकार देती है। इतिहास की शिक्षा विशेष रूप से राजनीतिक हो गई है, जिसमें क्रमिक सरकारें पंसदीदा ऐतिहासिक आख्यानों पर जोर देने के लिए पाठ्यपुस्तकों को संशोधित करती हैं जबकि वैकल्पिक दृष्टिकोणों को हाशिए पर रखती हैं। भाषा नीति भी इसी तरह संघर्ष उत्पन्न करती है, विशेष रूप से हिंदी और संस्कृत को बढ़ावा देने के संबंध में, जिसे गैर–हिंदी भाषी राज्य अक्सर भाषाई विधिता के लिए खतरे के रूप में देखते हैं। यहा तक कि विज्ञान और नैतिकता शिक्षा जैसे तटस्थ विषय भी अक्सर वैचारिक प्रतिद्वंद्विता के स्थल बन जाते हैं, जो दर्शाता है कि राजनीति शैक्षणिक सामग्री में कितनी गहराई से व्याप्त है।

उच्च शिक्षा संस्थानों ने विशेष रूप से शासन और प्रशासन में तुलनीय राजनीतिक अतिक्रमण देखा है। कुलपति और वरिष्ठ संकाय के चयन में तेजी से अकादमिक उत्कृष्टता पर राजनीतिक निष्ठा को प्राथमिकता दी जा रही है, जिससे संस्थागत स्वायतता और विद्वानों की स्वतंत्रता कम हो रही है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजनीतिक बहस के सूक्ष्म जगत में बदल गए है, जहाँ छात्र सक्रियता सामाजिक न्याय, आर्थिक असमानता और नागरिक स्वतंत्रता सहित व्यापक सामाजिक मुद्दों को संबोधित करती है। जेएनयू और हैदराबाद विश्वविद्यालय जैसे संस्थान प्रतीकात्मक क्षेत्र बन गए हैं जहाँ भारत के भविष्य के लिए प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों का जोरदार मुकाबला किया जाता है।

सकारात्मक कार्यवाही नीतियों, विशेष रूप से जाति–आधारित आरक्षण, एक और स्थायी फ्लैशपॉइंट का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ शिक्षा और राजनीति एक दूसरे से जुड़ते हैं। हालाँकि इन उपायों ने ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए शिक्षा तक पहुँच का काफी विस्तार किया है, लेकिन उन्होंने लगातार विवाद भी पैदा किए हैं। राजनीतिक दल इस मुद्दे पर खुद को रणनीतिक रूप से रखते हैं, कुछ वंचित समूहों से चुनावी समर्थन हासिल करने के लिए कोटा विस्तार की वकालत करते हैं, जबकि अन्य मध्यम वर्ग के घटकों को आकर्षित करने के लिए योग्यता–आधारित प्रणालियों पर जोर देते हैं। यह बहस भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समान अवसर की प्रतिस्पर्धी अवधारणाओं के बीच बुनियादी तनावों को समाहित करती है।

इस प्रकार भारतीय शिक्षा प्रणाली राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता का एक प्राथमिक क्षेत्र बन गई है, जहाँ पाठ्यक्रम शासन और पहुँच के बारे में निर्णय वैचारिक विचारों के साथ–साथ शैक्षणिक अनिवार्यताओं द्वारा भी आकार लेते हैं। यह वास्तविकता संस्थागत तंत्र की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित करती है जो भारत की विविध शैक्षिक आवश्यकताओं को समायोजित करते हुए अकादमिक अखंडता की रक्षा कर सके। इस तरह के संतुलन को स्थापित करने के लिए

लोकतांत्रिक जवाबदेही को बनाए रखते हुए शिक्षा नीति के प्रमुख पहलुओं को गैर–राजनीतिक बनाना आवश्यक है एक जटिल लेकिन आवश्यक कार्य एक ऐसे समाज के लिए जो शिक्षा की बहुलवादी विशेषता को बनाए रखते हुए इसकी परिवर्तनकारी क्षमता का दोहन करना चाहता है।

शिक्षा ने भारत के राजनीतिक विमर्श में तेजी से केंद्रीय भूमिका ग्रहण की है, खासकर चुनाव के मौसम में, जहां यह अक्सर पार्टी के घोषणापत्रों में प्रमुखता से शामिल होती है। राजनीतिक संस्थाएं अक्सर शिक्षा से संबंधित महत्त्वाकांक्षी वादों की रूपरेखा तैयार करती हैं जैसे कि मुफ्त या सब्सिडी वाले डिजिटल उपकरणों का प्रावधान, मध्याहन भोजन कार्यक्रम जैसी स्कूल पोषण योजनाओं में वृद्धि, वर्दी का वितरण, छात्रों के आवागमन के लिए सब्सिडी वाली साइकिलें और नए स्कूल या कॉलेज की स्थापना। हालांकि ये उपाय शिक्षा प्रणाली के भीतर दबाव वाली चुनौतियों का समाधान करते हैं जैसे संसाधनों तक सीमित पहुँच खराब पोषण और रसद बाधाएँ वे एक साथ चुनावी जुड़ाव के लिए सामरिक उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। इन पहलों को युवा लोगों, वंचित परिवारों और ग्रामीण आबादी सहित महत्त्वपूर्ण मतदाता वर्गों को आकर्षित करने के लिए सावधानीपूर्वक तैयार किया गया है। परिणामस्वरूप ईमानदार शैक्षिक नीति निर्माण और गणना की गई राजनीतिक प्रचार के बीच की सीमा तेजी से अस्पष्ट हो गई है। इसका परिणाम यह है कि नीतियों का लगातार निर्माण होता है जो दीर्घकालिक शैक्षिक परिवर्तन और शैक्षणिक अखंडता पर अल्पकालिक चुनावी लाभों पर जोर देते हैं।

इन शिक्षा–उन्मुख योजनाओं का वास्तविक निष्पादन अक्सर वास्तविक शैक्षिक चिंताओं के अलावा राजनीतिक उद्देश्यों के साथ एक मजबूत संरेखण को दर्शाता है। कार्यक्रमों को अक्सर उनके तत्काल और दृश्यमान प्रभाव के लिए डिजाइन किया जाता है कुछ ऐसा जिसे चुनावों से पहले मतदाताओं को आसानी से दिखाया जा सकता है। उदाहरण के लिये, छात्रों को डिजिटल उपकरण देने से ऑनलाइन सीखने और तकनीकी साक्षरता की सुविधा मिल सकती है, ऐसी पहल उच्च दृश्यता वाली परियोजनाओं के रूप में भी काम करती है जो मतदाताओं के बीच सद्भावना पैदा करती है। हालांकि इनमें से कई योजनाएँ वैध जरूरतों पर आधारित हैं और अल्पकालिक लाभ प्रदान करती हैं, लेकिन उनमें अक्सर एक स्थायी शैक्षिक रणनीति में आवश्यक एकीकरण की कमी होती है। दीर्घकालिक दृष्टि या उचित निगरानी के बिना, ये नैतियों समग्र शिक्षण परिणामों को बेहतर बनाने में विफल हो सकती है। शिक्षा और राजनीति का बढ़ता हुआ उलझाव शैक्षिक शासन को जटिल बनाता है, जिससे यह पहचानना अधिक कठिन हो जाता है कि क्या कोई नीति वास्तव में शिक्षा के मानकों को बढ़ाने का लक्ष्य रखती है या केवल राजनीतिक ब्रांडिंग के साधन के रूप में काम करती है।

शिक्षा पर बढ़ती राजनीतिक सुर्खियों के बावजूद, भारत को इस क्षेत्र में लंबे समय से चली आ रही और गहरी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षकों की लगातार अनुपस्थिति, पुराने पाठ्यक्रम, खराब बुनियादी ढाँचे और शिक्षकों के लिए अपर्याप्त प्रशिक्षण जैसी संरचनात्मक कमियों पूरे देश में बनी हुई है। बुनियादी शिक्षा कमजोर बनी हुई है, कई छात्र पढ़ने की समझ और बुनियादी अंकगणित जैसे आवश्यक क्षेत्रों में संघर्ष कर रहे हैं। कई सरकारी स्कूलों

में, भौतिक स्थितियों बहुत खराब है सुविधाओं में अक्सर कार्यात्मक शौचालय, स्वच्छ पेयजल, पर्याप्त बैठने की जगह या यहाँ तक कि पर्याप्त कक्षा स्थान की कमी होती है। इन अंतर्निहित समस्याओं को राजनीतिक बयानबाजी में शायद ही कभी प्राथमिकता दी जाती है, जो प्रदान की गई शिक्षा की गुणवत्ता के बजाय नामांकन संख्या या बनाए गए नए स्कूलों की संख्या जैसे मापने योग्य आँकड़ों पर ध्यान केंद्रित करती है। मात्रात्मक परिणामों के लिए यह प्राथमिकता राजनीतिक नेताओं को आसानी से रिपोर्ट करने योग्य मीट्रिक के माध्यम से सफलता का दावा करने में सक्षम बनाती है, जबकि गुणात्मक सुधारों की आवश्यकता को अनदेखा करती है जो अनुदेशात्मक प्रभावशीलता और समय शिक्षण अनुभवों को लक्षित करते हैं।

निजी शिक्षण संस्थानों के तेजी से प्रसार के साथ भारत की शिक्षा प्रणाली की जटिलता और भी बढ़ गई है। आर्थिक रूप से विवश परिवारों की सेवा करने वाले कम लागत वाले निजी स्कूलों से लेकर संपन्न शहरी लोगों की सेवा करने वाले प्रीमियम अन्तर्राष्ट्रीय स्कूलों तक, निजी क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुई है। यह वृद्धि सार्वजनिक शिक्षा के प्रति व्यापक असंतोष को दर्शाती है, जिससे माता–पिता व्यक्तिगत वित्तीय तनाव के बावजूद बेहतर विकल्प तलाशने के लिए प्रेरित होते हैं। निजी स्कूलों में वृद्धि ने सरकारों को एक कठिन नीतिगत स्थिति में डाल दिया है, क्योंकि उन्हें सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करने के अपने संवैधानिक कर्तव्य को निभाना होगा, साथ ही निजी विकल्पों के लिए बढ़ती सार्वजनिक मांग का जवाब भी देना होगा। यह द्वन्द्व अक्सर विरोधाभासी नीतिगत प्रतिक्रियाओं का परिणाम होता है। एक ओर, निजी शिक्षा में गुणवत्ता और समानता सुनिश्चित करने के लिए मजबूत नियामक ढांचे की आवश्यकता है दूसरी ओर, राजनीतिक सावधानी अक्सर ऐसे नियमों के प्रवर्तन को रोकती है, खासकर जब ऐसा करने से प्रभावशाली शिक्षा उद्यमियों या माध्यम वर्ग के मतदाताओं को अलग–थलग करने का जोखिम होता है जो अपने बच्चों के भविष्य के लिए निजी स्कूली शिक्षा पर निर्भर हैं।

साथ ही, भारत में शिक्षा के उद्देश्य और विषय–वस्तु के इर्द–गिर्द बहस ने एक अलग वैचारिक मोड़ ले लिया है। शैक्षिक लक्ष्यों का निर्माण राजनीतिक एजेंडों से तेजी से प्रभावित हो रहा है, जो राष्ट्र निर्माण, पारंपरिक मूल्यों के प्रचार, सांस्कृतिक गौरव और वैश्विक रूप से सक्षम कार्यबल तैयार करने पर जोर देते हैं। ये वैचारिक झुकाव शिक्षा नीति के विभिन्न पहलुओं में स्पष्ट है, जिसमें पाठ्यक्रम विकास, भाषा निर्देश और मूल्यांकन मानक शामिल हैं। संस्कृत या क्षेत्रीय भाषाओं को प्राथमिकता दी जाए या पाठ्यपुस्तकों में कुछ ऐतिहासिक हस्तियों और घटनाओं को कैसे चित्रित किया जाए, इस पर अक्सर विवादास्पद बहसें होती हैं। ऐसे निर्णय अक्सर सतारूढ़ सरकार की विचारधारा को दर्शाते हैं। यहां तक कि विज्ञान और नैतिक शिक्षा जैसे विषय भी इस राजनीतिकरण से अछूते नहीं हैं, जिनकी विषय–वस्तु को विशिष्ट सांस्कृतिक या राजनीतिक दृष्टिकोणों के साथ संरेखित करने के लिए चुनिंदा रूप से क्यूरेट किया जाता है। नतीजतन, शैक्षणिक संस्थान ऐसे क्षेत्र बन गए हैं जहां व्यापक राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष होते हैं अक्सर अकादमिक तटस्थता समावेशिता और आलोचनात्मक सोच की कीमत पर।

भारत की शिक्षा प्रणाली का हर पहलू नेतृत्व और पाठ्यक्रम डिजाइन तक संसाधन आवंटन और नीति निर्माण से लेकर संस्थागत अब राजनीतिक एजेंडों से प्रभावित है। जबकि इस बढ़ी हुई राजनीतिक रुचि ने शिक्षा क्षेत्र में ध्यान और निवेश को बढ़ाया है, इसने सार्थक, प्रणलीगत परिवर्तन के बजाय प्रतीकात्मक इशारों और अल्पकालिक लाभों पर जोर दिया है। मुख्य चुनौती शैक्षिक नियोजन को चुनावी विचारों से अलग करने और इसके बजाय समानता गुणवता और समावेशी विकास पर केंद्रित दीर्घकालिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने में है। वास्तविक परिवर्तन के लिए सरकारों और प्रशासनों में गैर–राजनीतिक, लगातार प्रयासों की आवश्यकता होगी, जो सीखने के परिणामों, शिक्षक प्रभावशीलता और छात्र कल्याण में सुधार पर केंद्रित होंगे। लोकतांत्रिक मूल्यों और शैक्षिक अखंडता के प्रति निरंतर प्रतिवद्धता के माध्यम से ही भारत की शिक्षा प्रणाली राजनीतिक सुविधा के उपकरण के बजाय सामाजिक परिवर्तन का एक सच्चा साधन बन सकती है।

निष्कर्ष

भारत में शासन और शिक्षा के बीच परस्पर क्रिया एक गतिशील और बहुआयामी संबंध प्रस्तुत करती है। जबकि बढ़ी हुई राजनीतिक रुचि ने निस्संदेह वित्त पोषण में वृद्धि की है और शैक्षिक सुधार को राष्ट्रीय चर्चा में सबसे आगे लाया है, जिससे स्कूल के बुनियादी ढांचे, नामांकन दरों और नीति कार्यान्वयन में ठोस सुधार हुआ है, इस जुड़ाव ने एक साथ नई जटिलताएँ भी पेश की हैं। सबसे अधिक दबाव वाली चिंताओं में पाठ्यक्रम में पक्षपातपूर्ण वैचारिक दृष्टिकोणों का समावेश और सरकार बदलने पर बार–बार नीति उलटफेर के कारण होने वाली अस्थिरता शामिल है। क्रमिक प्रशासनों की राजनीतिक विचारधाराओं द्वारा निर्देशित ये बदलती शैक्षिक प्राथमिकताएँ एक असंगत नीतिगत वातावरण बनाती हैं जो सुसंगत, दीर्घकालिक शैक्षिक विकास को कमजोर करती है।

भारत को एक मजबूत और प्रगतिशील शिक्षा प्रणाली विकसित करने के लिए, उसे सरकारी निगरानी और संस्थागत स्वतंत्रता के बीच एक नाजुक संतुलन को बनाए रखना होगा। संसाधन आबटन, समान पहुँच बनाए रखने और नियामक ढाँचे स्थापित करने के लिए राज्य की भागीदारी अपरिहार्य बनी हुई है, फिर भी अति–राजनीतिकरण से अकादमिक रचनात्मकता को दबाने और शैक्षणिक उद्देश्यों को विकृत करने का जोखिम हैं। नवीन शिक्षण विधियों को विकसित करने, कठोर शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने और स्वतंत्र विचार को बढ़ावा देने के लिए शैक्षणिक संस्थानों की परिचालन स्वतंत्रता को संरक्षित करना समय शिक्षा, विश्लेषणात्मक तर्क और सक्षम, सामाजिक रूप से संलग्न व्यक्तियों की खेती के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए मौलिक है।

भारत की शैक्षिक उन्नति का प्रक्षेपवक्र अंततः इन अक्सर प्रतिस्पर्धी हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की इसकी क्षमता पर निर्भर करेगा। एक इष्टतम संतुलन प्राप्त करना जहाँ सरकारी निकाय शिक्षकों और शैक्षणिक संस्थानों की व्यावसायिक स्वायत्तता का सम्मान करते हुए आवश्यक समर्थन और नीति निर्देश प्रदान करते हैं एक शिक्षा मॉडल विकसित करने

में महत्वपूर्ण होगा जो व्यक्तिगत आकांक्षाओं और सामूहिक राष्ट्रीय उद्देश्यों दोनों को पूरा करता है। ऐसा दृष्टिकोण न केवल सीखने के परिणामों को बढ़ाएगा बल्कि भारत की सामाजिक–आर्थिक प्रगति और इसकी लोकतांत्रिक नींव को मजबूत करने में भी सार्थक योगदान देगा।

संदर्भ सूची

1. Basu, D.D (2013) Introduction to the Constitution of India. LexisNexis.
2. Mishra, R.C (2007) Democratic Politics and Education. APH Publishing Corporation.
3. Krishna Kumar (2005) Political Agenda of Education: A Study of Colonialist and Nationalist Ideas. SAGE Publications.
4. Right to Education Act, 2009 - Ministry of Law and Justice, Government of India.
5. Tilak, Jandhyala B.G. (2006) Education: A Saga of Spectacular Achievements. NIEPÁ, New Delhi.